LITERATURE AND BOOKS / UNCATEGORIZED

सभ्यता का एक दिन – अज्ञेय

By **Meri Baatein** — May 17, 2021

नरेन्द्र जीवन के झमेलों से बेफ़िक्र रहता था। लापरवाही उसका सिद्धान्त था। राह-चलते जो मिल गया, ले लिया और चलते बने। सुख मिला, हँस लिए; दुख मिला, सह लिया। पैसे मिल गये तो इस हाथ से ले उस हाथ खर्च कर डाले, फटकार मिली तो इस कान सुनी उस कान बाहर कर दी। ऐसा वह तभी से हुआ था जब से घर-बार छोड़कर भाग आया था, पहले ऐसा नहीं था वह। लेकिन फिर भी इस थोड़े-से अर्से में ही, यह ढंग उस पर ऐसा बैठ गया था कि इसके अलावा और किसी ढंग की कल्पना ही वह नहीं कर सकता था। इस वर्ष-भर में कई बार वह भूखा लेट गया, कई बार सर्दी से ठिठुरता पड़ा रहा, कई बार सड़क की पटरी पर बैठकर भीगा किया, लेकिन क्या उसे कभी उस पीछे छूटे हुए घर की याद आयी? कभी नहीं। ऐसे समय में दार्शनिकता के झोले में अपने को छिपा लेता, कुछ गा गुनगुना लेता और बस ठीक रहता, बेफ़िक्र रहता; बेफ़िक्र ही नहीं, लापरवाह रहता।

आज सवेरे वह बेफिक्र ही नहीं, ख़ुश था। उसकी जेब में एक रुपया था – यह सोचने की उसे ज़रूरत नहीं थी कि वह कैसे वहाँ पहुँचा है, वहाँ पहुँचना चाहिए था या नहीं। वह रुपया था, और नरेन्द्र की जेब में था, बस इतना काफ़ी था।

नरेन्द्र दोनों हाथ जेब में डाले, एक में रुपया थामे, सीटी बजाता हुआ शहर की मुख्य सड़क पर चला जा रहा था। मन में कोई विचार नहीं था। केवल सीटी के गीत पर ताल देती हुई सन्तोष की लहर-सी थी।

तभी नरेन्द्र ने सुना, एक रेडियो कम्पनी के भीतर से रेडियो चिल्ला रहा है – अपना भी विज्ञापन कर रहा है और अन्य चीज़ों का भी...

"...इन न्यामतों में एक है कैलिफ़ोर्निया के आड़ू। एक दिन था, जब अमरीका के बाहर, बल्कि क़ैलिफ़ोर्निया के बाहर, यह आड़ू एक सपना थे। लोग इनका नाम सुनते थे, और आह भर लेते थे। जो अमीर थे, वे कैलिफ़ोर्निया जाते थे और लौटकर उन आड़ुओं की तारीफ़ करके अपने दोस्तों को ईर्ष्या से जलाते थे; जिन्हें खाने के लिए स्वर्ग की अप्सराएँ उतरती हैं; जिन्हें

पकाने के लिए फ़रिश्ते अपनी गर्म साँसों से उन्हें फूँक-फूँक लाल करते हैं... आज आप यहीं पर उन्हें मामूली दाम पर खरीदकर खा सकते हैं। आज..."

नरेन्द्र आगे बढ़ गया। अब उसके मन में उस सन्तोष के साथ एक और भी विचार अस्पष्ट रूप में छा गया कि कैलिफ़ोर्निया के आड़ू मामूली दाम पर मिलते हैं, और उसकी ज़ेब में पूरा एक रुपया है।

एक दुकान पर उसने बोर्ड लगा देखा, 'सब प्रकार के अचार, मुरब्बे, जैम, डिब्बे के फल -" और आगे बढ़ने की चिन्ता न कर भीतर घुस गया।

एक छोटा डिब्बा कैलिफ़ोर्निया के आड़ू। साढ़े पाँच आने।

नरेन्द्र बाक़ी पैसे जेब में डालकर और टीन हाथ में लेकर बाहर आ गया। बाहर आकर उसने देखा, सड़क पर भीड़ है। वह एक गली में हो लिया, और धीरे-धीरे चलने लगा। डिब्बे पर लगे हुए काग़ज़ का चित्र उसने देखा, फिर ऊपर लिखी हुई पूरी इबारत उसने पढ़ डाली, कम्पनी के नाम तक, फिर चाकू न होने के कारण एक मकान की पत्थर की सीढ़ी के कोने पर पटक कर डिब्बे में छेद किया, फिर दाँतों से खींचकर ढक्कन अलग कर दिया। तब, एक बार चारों ओर देखकर वह चलता-चलता ही आड़ू खाने लगा।

और दार्शनिकता भी आगे उसके भीतर चेत उठी।

...न्यामत। स्वर्ग की अप्सराएँ। कैसी होती होंगी वे? रिश्ते। पहले तो केवल कैलिफ़ोर्निया खाती थी, अब दुनिया इन्हें खाती होगी। उपज बहुत बढ़ गयी होगी। अब भी फ़रिश्ते ही पकाते होंगे? कितने फ़रिश्ते लगे होंगे इस काम में? ...उँह, बकवास। विज्ञापनबाज़ी।

लेकिन फिर भी बड़ी बात है। आज मैंने रेडियो पर सुना। रेडियो विदेशी कारखाने में बना। उसके अलग-अलग हिस्से बनाने, पैक करने और यहाँ तक पहुँचाने में हज़ारों आदमियों के हाथ लगे होंगे। हज़ारों ने यह मेहनत की कि मैं, नरेन्द्र, इस खबर को सुनूँ और आड़ू। कैलिफ़ोर्निया में तोड़े गये, छाँटे गये, पकाये गये, गिने गने, तौले गये। डिब्बे में डाले गये, जिसके लिए डिब्बे का कारखाना बना। मोटर में लदकर स्टेशन आये-मोटर का कारखाना काम आया। रेल में लदे, जहाज़ में लदे। लोहे के कारखाने काम में आये। ढालने की मशीनें काम आयीं, बिजली-घर काम आये, कील बनानेवाले, पूर्जे बनानेवाले, रस्से बनानेवाले, झंडे बनानेवाले, नावें बनानेवाले, हाँ तोपें तक बनानेवाले, सब काम आये। बन्दरगाह के राज-मज़दूर काम आये, कुली काम आये। शायद कुल दुनिया का एक गिना जाने लायक़ हिस्सा काम आया कि ये आड़ू वहाँ पहुँचे-और मैंने इतने हज़ारों आदमियों का श्रम खरीदा है। साढ़े पाँच आने में! और वह साढ़े पाँच आने भी है आड़ुओं की क़ीमत, उस श्रम की नहीं।

तो?

यह क्या है? कैसे है? क्यों है?

क्या पहले भी ऐसे ही था? पहले तो एक प्राणी अपना पेट तब भरता था, जब दूसरे को मार डाले-उसी को भूनकर, या कच्चा ही खा जाय। और अब...

आड़ुओं का डिब्बा खाली हो गया। नरेन्द्र ने एक बार उसे मुँह के पास ले जाकर भीतर देखा, उसमें कुछ नहीं था। लेकिन फिर भी वह एक क्षण देखता ही रहा।

यह सब विज्ञान की देन है। विज्ञान से ही ऋद्धि मिलती है और सुख। असल में यह सब सभ्यता की देन है। सभ्यता ने ही विज्ञान दिया है, सभ्यता ही इस दुनिया को सहयोग में चला रही है।

सभ्यता!

नरेन्द्र ने एक साँस लेकर टीन फेंक दिया। उसके गिरने की आवाज़ ने मानो फिर कहा, "सभ्यता।"

नरेन्द्र को लगा कि वह सभ्यता से जैसे अलग है, अछूत है, निर्वासित है।

वह गली से लौटकर सड़क पर आया। आधे घंटे बाद उसने पाया कि वह 'सब प्रकार के अचार, मुरब्बे, जैम, डिब्बे के फल, टॉफ़ी, चॉकलेट, बिस्कुट इत्यादि' बेचनेवाले करीमभाई के यहाँ लगभग साढ़े पाँच आने रोज़-दस रुपये मासिक का नौकर है।

2

यह थी सवेरे की बात। दोपहर में जब उसे आधे घंटे की छुट्टी दी गयी, तब उस लापरवाह ने एक और डिब्बा क़ैलिफोर्नियन आड़ुओं को खरीदा, गली में घुस-कर खोला, और धीरे-धीरे टहलता हुआ खाने लगा।

ज्यों-ज्यों उसकी जीभ उस नये परिचित स्वाद के अनुभव से तृप्त होने लगी, त्यों-त्यों उसका हृदय दर्शन की बजाय एक अनुग्रह के भाव से भरने लगा। उसे लगने लगा कि वह संसार का भला चाहता है, उसके लिए सचेष्ट है। उसके मन में इच्छा हुई कि संसार के प्रति अपनी सद्भावना को किसी तरह किसी पर प्रकट कर सके, अपने अनुग्रह के घेरे में किसी को घेरकर अपना सके। सवेरे जिस निर्वासन का, सभ्यता के अलगाव का अनुभव उसे हुआ था, उसे मिटा दे, सभ्यता की आत्मा से एक हो जाय।

तभी उसे सामने एक आदमी आता हुआ दिखाई दिया जो मामूली गाढ़ का फटा कुरता और घुटने तक की धोती बाँधे था, लोहे के फ्रेम का टेढ़ा चश्मा लगाये था, और सिर झुकाये चल रहा था। जब वह नरेन्द्र के पास आ गया, तब नरेन्द्र ने एकाएक उसकी ओर आड़ू का डिब्बा बढ़ाते हुए कहा, "लीजिए – मेरे साथ हिस्सा बँटाइएगा?"

उस आदमी ने कुछ चौंककर डिब्बे की ओर देखा – नरेन्द्र को लगा कि वह भूखी-सी आँखों से डिब्बे पर लिखी इबारत पढ़ रहा है। नरेन्द्र हाथ बढ़ाये, साकार आग्रह बना खड़ा रहा।

एकाएक उस व्यक्ति ने कुछ पीछे हटकर कहा, "तुम्हें शर्म नहीं आती कि देश का रुपया विदेशी माल पर उड़ा रहा हो? और वह भी ग़ैर-ज़रूरी माल पर, निरी स्वाद-लोलुपता के लिए?"

नरेन्द्र सहम गया। किसी तरह बोला, "यह कैलिफ़ोर्निया के आड़ू हैं। सभ्यता की देन हैं।"

"जी हाँ। यह शैतान की चाट है। हमारे पतन की निशानी है। आपका कलंक है। वह-"

"सब लोग तो खाते हैं-"

"खाते हैं। लेकिन तुम जानते हो, संसार का कितना बड़ा हिस्सा आज पतन के मुँह में जा रहा है? हमारे भीतर घुन लग गया है। हम सड़ रहे हैं। और अगर शीघ्र न चेते तो-"

"क्यों तुम्हें भूख नहीं लगती?"

"लगती है, लेकिन मैं उसे अपने भाइयों का जिगर खाकर नहीं मिटाना चाहता। यह भूख ही, सब ओर फैला हुआ विनाश ही हमें आत्माभिमान की शिक्षा देता है।"

वह व्यक्ति एक बार फिर घृणा से उस डिब्बे की ओर देखकर आगे बढ़ गया।

नरेन्द्र भी स्थिर दृष्टि से उस डिब्बे को पकड़े हुए अपने हाथ की ओर देखता रहा। उसका मन जैसे पथरा गया था, और हाथ भी अवश हो गया था। धीरे-धीरे हाथ की पकड़ शिथिल होती गयी, और एकाएक डिब्बा उसके हाथ से छूट पड़ा।

वह एकदम से जाग गया।

वह ठीक कहता है। यह कलंक है। ज़बान की चाट है।

सब ओर पतन है। सभ्यता ही ने हमें इस पतन की ओर बढ़ाया है। विज्ञान ने हमें सुख नहीं, प्राचुर्य दिया है और प्राचुर्य की सड़ान्ध ने हमारा दिमाग़ विकृत कर दिया है।

पतन। पतन। सभ्यता। लेकिन पतन में आत्माभिमान जागा है।

सभ्यता! आत्माभिमान!

नरेन्द्र दृढ़ क़दमों से लौट पड़ा। हुसैनभाई करीमभाई की दुकान पर पहुँचकर उसने कहा, "मैं आपकी नौकरी नहीं करूँगा।"

"क्यों?"

"आप विदेशी माल बेचते हैं-वह हमारा कलंक है।"

मालिक मुस्करा दिये। नरेन्द्र बाहर निकलकर फिर सड़क पर टहलने लगा। कोई व्यक्ति उसकी ओर देखता तो वह कुछ अकड़ जाता, और उसके भीतर मानो एक शब्द गूँज उठता -'आत्माभिमान'।

3

शाम को नरेन्द्र टहलते-टहलते थम गया। सीटी बजाने की इच्छा भी उसे न हुई। कुछ ठंड-सी भी हो चली।

नरेन्द्र ने पीठ झुका ली। हाथ ज़ेब में डाल लिए।

साढ़े पाँच और साढ़े पाँच, ग्यारह पाँच आने।

नरेन्द्र को याद आया कि पाँच आने उसकी जेब में बाक़ी हैं। साथ ही यह भी विचार आया कि उसे अभी अपने पतन का प्रायश्चित्त करना है।

वह एक दुकान में गया और देशी मुरब्बे माँगने लगा। एक दुकान, दूसरी, तीसरी दुकान। आखिर उसे हिन्दुस्तान ही में बने हुए आड़ू के मुरब्बे का डिब्बा मिल गया – दाम पाँच आने।

नरेन्द्र ने डिब्बा लिया, पैसे चुकाये और बाहर निकला। उसका अभिमान दीप्त हो उठा। उसने देश के नाम पर पाँच आने खर्च किये हैं। पाँच आने-जो उसके अन्तिम पाँच आने थे, जिनके जाने में उसकी जेब खाली हो गयी है।

अब वह गली में नहीं गया। जितना अभिमान उसमें भर रहा था, उसके लिए गली बहुत तंग जगह थी। वह सड़क पर ही एक दुकान के बाहर तख़्त पर बैठ गया और डिब्बा खोलकर खाने लगा।

मुरब्बा खाकर, उँगली चाटकर, डिब्बे भीतर झाँककर, उँगली फिर उसमें फिराकर और मुँह में डालकर, ओठ चूसकर, अन्त में नरेन्द्र ने डिब्बा फेंक दिया। डिब्बा खनखनाता हुआ लुढ़कता चला गया। नाली में गिरा। शान्ति हो गयी।

एक ओर से एक लड़का दौड़ा हुआ आया। उसने डिब्बा उठाया, झटककर नाली की कीच झाड़ दी; और चलने को हुआ।

दूसरी ओर से दो लड़के निकले, पहले से डिब्बा छीनने की कोशिश में लगे।

तीसरी ओर से एक नंग-धड़ंग मैला बच्चा निकला और ललचायी आँखों से डिब्बे की ओर देखने लगा।

चौथी ओर से क़द में कुछ बड़ा एक लड़का निकला, अधिकार के स्वर में बोला, "हटो!" और डिब्बा छीनकर बोला, "अरे यह तो जैम का डिब्बा है।" दो काली उँगलियाँ भीतर घुसीं, घूमीं, बाहर निकलीं और मुँह में चली आयीं।

तब मारपीट, गाली-गलौच, नोच-खसोट होने लगी। डिब्बे में कुछ नहीं था, उन शरीरों में भी कुछ नहीं था, लेकिन कुछ चीथेड़े इधर-उधर गिरे, कुछ नोचे हुए बाल, कुछ मैला रक्त।

नरेन्द्र देखता रहा। उसका हृदय ग्लानि से भर गया। क्या यही है हमारा आत्माभिमान! यही है हमारी सभ्यता!

नहीं, सभ्यता ने हमें कुछ नहीं दिया। विज्ञान नहीं दिया। सुख नहीं दिया।

वह क्रियाशीलता भी नहीं दी। जिससे प्राचुर्य आता है। आत्म-गौरव नहीं दिया।

वह पतन ही दिया जिससे अभिमान जागता है।

सभ्यता ने हमें कुछ नहीं दिया।

दिया है। दिया है। यह – यह – यह...

4

एकदम से नरेन्द्र को जैसे किसी ने थप्पड़ मार दिया हो। भूतकाल में से एक आग की लपट-सी निकली जो दार्शनिकता को, बेफ़िक्री को, लापरवाही को भस्म कर गयी। उसे याद आया कि उसके घरवाले भी हैं जिन्हें वह छोड़ आया है। उसके भाई-बहिन, क्या वे ऐसे होंगे? उसकी स्त्री-क्या वह ऐसी ही सन्तान की माँ होगी? उसका शिशु-क्या वह भी ऐसे होगा, नाली के पड़े हुए गन्दे टीन के लिए लड़ मरनेवाला सभ्य?

हाँ, उसके भाई-बहिन, उसकी स्त्री, उसका बच्चा भी भूखे होंगे। और बिलकुल अकेले होंगे -एक-दूसरे के शत्रु।

वह उन्हें इस हालत में बचा सकता था। शायद अब भी बचा सकता है। सभ्यता से बचा सकता है।

वे गाँव में हैं, जहाँ सभ्यता अभी नहीं पहुँची। उसे भी गाँव जाना चाहिए। सभ्यता के बाहर निकलना चाहिए। लेकिन कैसे? कैसे?

गाँव दूर है, उसे रेल का टिकट चाहिए। उसे ताँगा चाहिए। उसे बल के लिए भोजन चाहिए। कैसे?

उसे यह सब-कुछ चाहिए। इस सब-कुछ के लिए पैसा चाहिए। कैसे?

कैसे? उसे मजूरी चाहिए। उसे नौकरी चाहिए। उसे चाहिए... उसे चाहिए-कुछ ही चाहिए जो उसे सभ्यता से बाहर निकालकर ले जाये, जहाँ उसके भाई-बहिन हैं, स्त्री है, बच्चा है-और यह सभ्यता नहीं है।

वह सड़क की ओर, सभ्यता की उन सब दुकानों की ओर लौट पड़ा।

5

लेकिन तब शाम हो चुकी थी। दुकानें बन्द हो गयी थीं।

(आगरा, दिसम्बर 1936)

- ***Download The Story " " By Agyeya in PDF Form – Click To Download Free***

About The Author – Agyeya

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' को कवि, शैलीकार, कथा-साहित्य को एक महत्त्वपूर्ण मोड़ देने वाले कथाकार, ललित-निबन्धकार, सम्पादक और अध्यापक के रूप में जाना जाता है। इनका जन्म 7 मार्च 1911 को उत्तर प्रदेश के कसया, पुरातत्व-खुदाई शिविर में हुआ. अज्ञेय प्रयोगवाद एवं नई कविता को साहित्य जगत में प्रतिष्ठित करने वाले कवि हैं. अनेक जापानी हाइकु कविताओं को अज्ञेय ने अनूदित किया.

Sachchidananda Hirananda Vatsyayan popularly known as Agyeya was an Indian writer, poet, novelist, literary critic, journalist, translator and revolutionary in Hindi language. He pioneered modern trends in Hindi poetry, as well as in fiction, criticism and journalism. He is regarded as the pioneer of the Prayogavaad (experimentalism) movements in modern Hindi literature.

Buy Agyeya Books Online On Amazon

1. Shekhar Ek Jeevani – शेखर एक जीवनी
2. Shekhar EK Jeevani Part 2 – शेखर एक जीवनी भाग 2
3. Agyeya Ki Sampoorna Kahaniyan – अज्ञेय की संपूर्ण कहानियां
4. Chuni Hui Kavitaayen – Agyeya – चुनी हुई कवितायें – अज्ञेय

Image Credit: Sunil Joshi/Art And Design Store